|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 9: राजविद्याराजगुह्ययोग

3/3 (श्लोक 20-34), शनिवार, 18 जून 2022

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/WzeLqtQCWEE

भक्ति - जीवन में सार्थकता का मार्ग है।

पारंपरिक पद्धति से दीप प्रज्वलन और गुरु वंदना के साथ विवेचन सत्र का आरंभ हुआ। सत्र के आरंभ में इस अनुभूति का होना अत्यंत आवश्यक है कि हम सभी साधक अत्यंत भाग्यवान हैं, जो हमें गीता अभ्यास का यह सुनहरा अवसर प्राप्त हुआ है। भगवद्गीता को जीवन में लाने का यह प्रयास निश्चित ही मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है। स्वामी जी महाराज ने एक बार अपने प्रवचन में कहा कि गीता अभ्यास से हम सब की मुक्ति निश्चित है, सभी आश्चर्यचकित हो गए। स्वामी जी बोले, पूरी बात सुनो, मुक्ति निश्चित है लेकिन कब? इस जन्म में, अगले जन्म में या पचास जन्मों के बाद?

बात को इस तरह समझें कि, हमें मुंबई से दिल्ली का प्रवास करना है, अब उस अंतिम पड़ाव तक जाने के लिए हमारी गति क्या है इस पर ही निर्भर करेगा कि हम कब अपने गंतव्य तक पहुंचते हैं। यह प्रवास हम पैदल चलकर करते हैं, कार से करते हैं, ट्रेन से करते हैं या फ्लाइट से, इस पर ही तो हमारी गति निर्भर करेगी। उस मार्ग पर चलते हुए क्या करना है और क्या छोड़ना है, इन बातों को हम जितनी जल्दी समझ पाएंगे, हमारी गति उस पर भी निर्भर करेगी। अर्थात भगवद्गीता के अभ्यास से मोक्ष प्राप्ति निश्चित है, लेकिन वह किस गति से होगी यह हमारे ऊपर निर्भर करता है।

दूसरी महत्वपूर्ण और समझने वाली बात यह है कि क्या इस अभ्यास को करने वाले हर व्यक्ति को मुक्ति मिलेगी? प्रज्ञाचक्षु श्री शरणानंदजी महाराज के जीवन का एक दृष्टान्त - शरणानन्द जी महाराज से एक बार एक साधक शिष्य ने पूछा कि - महाराज जी मैं न तो पूजा पाठ करता हूं, न ही शास्त्रों का अभ्यास और न ही मेरा मन ध्यान साधना में लगता है, ऐसी अवस्था मे मेरे लिए मुक्ति का क्या मार्ग है? महाराज जी बोले, एक ही सूत्र का पालन करो, **स्वविवेक का आदर** करो। स्वविवेक अर्थात जिसे तुम ठीक मानो उसे आज से ही करने लगो, और जिसे तुम ठीक न मानो उसे आज से ही छोड़ दो। इस तरह स्वविवेक का आदर करने से तुम्हें अवश्य मुक्ति मिल जाएगी। साधना का यही वास्तविक मार्ग है। वस्तुतः यह बहुत कठिन है, आपके पास छूट का कोई मार्ग ही नहीं रह जाता। आपको जो ठीक लग रहा है वह आपको करना है और जो नहीं लग रहा उसे छोड़ना है, तात्पर्य यह कि **अपने हर कार्य का दायित्व, आपका अपना दायित्व है।**

गीतापाठ या गीताभ्यास का अर्थ बहुत सारे सिद्धांतों को जानना या समझना नहीं है, लेकिन हमें तो अपनी अतिरिक्त और **अनावश्यक जानकारियों को भूलना** है।

9.20

त्रैविद्या मां(म्) सोमपाः(फ्) पूतपापा,
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं(म्) प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकम्,
अश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्।।9.20।।

तीन वेदों में कहे हुए सकाम अनुष्ठान को करने वाले (और) सोमरस को पीने वाले (जो) पाप रहित मनुष्य यज्ञों के द्वारा (इन्द्ररूप से) मेरा पूजन करके स्वर्ग-प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं, वे (पुण्यों के फलस्वरूप) पवित्र इन्द्रलोक को प्राप्त करके (वहाँ) स्वर्ग में देवताओं के दिव्य भोगों को भोगते हैं।

विवेचन: इस श्लोक को लेकर मुख्यतः दो प्रकार की शंकाएं व्यक्त होती है, पहली यह कि वेद तो चार है फिर यहां त्रैविद्या क्यों कहा गया है, सही अर्थों में देखा जाए तो वेद चार नहीं हैं, वेद तो एक ही है किन्तु वेद की ऋचाओं को चार वर्गों में बांटा गया है ।

१) नियत चरण वाले श्लोक - **ऋग्वेद**
२) छंदबद्ध और गाए जाने वाले श्लोक - **सामवेद**
३) अक्षरों की बहुत नियमितता न होने वाले श्लोक - **यजुर्वेद**
४) सांसारिक क्रियाओं के निष्पादन हेतु मार्गदर्शन करने वाले श्लोक - **अथर्ववेद**

इस प्रकार सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद ये तीन वेद सकाम कर्म करने वालों के लिए मार्गदर्शन करने वाली तीन विद्याऐं हैं, इसलिए यहाँ त्रैविद्या शब्द का प्रयोग हुआ है। दूसरी शंका इस श्लोक में आए सोमरस शब्द को लेकर है। सोमरस का मतलब अधिकतर शराब से लिया जाता है। शराब पीने वाले कहते हैं कि देखो भगवद्गीता में भी सोमरस पीने का उल्लेख है, लेकिन यह एक बहुत ही गलत धारणा है। देवलोक में पाई जाने वाली एक अद्भुत बेल सोमवल्ली को ऋषि पृथ्वी पर लेकर आए। इस बेल को एक विशेष तरीके से बोया जाता पारे के भस्म को इसकी जड़ पर लगा कर बोने से प्रतिपदा से पूर्णमासी तक इसमें हरी पत्तियां आती हैं और फिर प्रतिपदा से अमावस्या तक एक-एक लाल रंग की गाँठ निकलती हैं। यह गाँठ रस से भरी होती हैं, इस रस को ही कहा जाता है सोमरस। यह रस पीने से कई कई वर्षों तक भूख प्यास नहीं लगती। तपस्या के दौरान ऋषि मुनि इसका ही उपयोग करते थे। शराब पीने वालों ने अपनी सुविधा के लिए और शराब पीने की लज्जा से बचने के लिए, शराब को ही सोमरस की उपमा दे दी और उसका प्रतिपादन भगवद्गीता जैसे ग्रंथ में किया गया है ऐसा मान लिया। स्वर्ग लोक के भोगों की ओर आकर्षित होकर स्वर्ग की प्राप्ति करने की इच्छा होना गलत नहीं है, लेकिन भगवान कहते हैं कि यह इच्छा एक अच्छा प्रयास अर्थात **प्रेयस तो है लेकिन यही श्रेयस नहीं,** अर्थात प्रिय तो है लेकिन योग्य नहीं। देवताओं को पूजने से स्वर्ग की प्राप्ति तो हो जाती है लेकिन यह प्राप्ति स्थायी नहीं है, इसे अगले श्लोक में भगवान समझाते हैं।

9.21

ते तं(म्) भुक्त्वा स्वर्गलोकं(म्) विशालं(ङ्),
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं(म्) विशन्ति।
एवं(न्) त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना,
गतागतं(ङ्) कामकामा लभन्ते।।9.21।।

वे उस विशाल स्वर्गलोक के (भोगों को) भोगकर पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक में आ जाते हैं। इस प्रकार तीनों वेदों में कहे हुए सकाम धर्म का आश्रय लिये हुए भोगों की कामना करने वाले मनुष्य आवागमन को प्राप्त होते हैं।

विवेचन: भक्ति से मिलने वाला स्वर्ग रूपी यह फल नाशवान है, अस्थाई है। उदाहरणार्थ -- हम किसी पंच तारांकित होटल में जाते हैं वहां हमारा क्रेडिट कार्ड स्वाइप किया जाता है यह जानने के लिए कि हमारी आर्थिक स्थिति और पेमेंट करने की क्षमता और मर्यादा कितनी है। मान लीजिए वह मर्यादा पचास हजार रुपये है और उस होटल में एक दिन का एक कमरे का किराया ₹ दस हजार है, तो होता क्या है इस मर्यादा को जानने के बाद पाँच दिन तक तो सारी सेवाएं आपके पैरों तले होती हैं , आप बिल्कुल राजा की तरह महसूस करते हैं, जो मांगा, जब मांगा वह आपको मिल जाता है। लेकिन छठवें दिन क्या होता है, छठवें

दिन सुबह-सुबह आपके पास एक फोन आता है कि बारह बजे तक चेकआउट करना है। आप कितनी भी विनती करे, कुछ घंटे और रहने का प्रयास करें, तब भी वह संभव नहीं होता। आप सोचते हैं पाँच दिन तक मेरी सेवा में लगे रहने वाले इस होटल के लोग मुझे अतिरिक्त चार घंटे भी रहने नहीं दे रहे। यही होता है जब आप स्वर्ग में जाते हैं,आपके पुण्य का पूरा लेखा-जोखा लिया जाता है, जो वहाँ पर मिलने वाली सुविधाओं को निर्धारित करता है। जब यह पुण्य का खाता खाली हो जाता है तो बिना टेलीफोन किए ही, आपको वहां से भगा दिया जाता है। आप वापस मृत्युलोक में आ जाते हैं, इस प्रकार पुण्य कमाया स्वर्ग गए, पुण्य समाप्त हुआ, मृत्युलोक आ गए । यह **पुनरपि जनमम् पुनरपि मरणम्** का आवागमन चलता ही रहता है। इसलिए स्वर्ग लोक की प्राप्ति स्थाई नहीं होती।

सनातन धर्म के अतिरिक्त अन्य सभी धर्मों में इस स्वर्ग लोग का अलग-अलग और आकर्षक वर्णन है। इस स्वर्ग लोक की प्राप्ति के अलग-अलग उपाय भी बताए गए हैं। लेकिन सनातन धर्म इससे भी आगे की बात करता है, मोक्ष की संकल्पना केवल सनातन धर्म में है। पुनरपि जनमम् पुनरपि मरणम् के इस आवागमन से ऊपर उठने वाली संकल्पना है, मोक्ष की संकल्पना। मोक्ष का अर्थ अस्थाई देवलोक की प्राप्ति से नहीं अपितु स्थाई परमधाम की प्राप्ति से जुड़ा है। मोक्ष अर्थात मुक्ति का अर्थ सभी इच्छाओं और कामनाओं से मुक्त होकर भगवद् ध्यान का मार्ग स्वीकारना है। इस मार्ग को अधिक स्पष्टता से समझाते हुए भगवान आगे के श्लोकों में कहते हैं।

9.22

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां(म्), ये जनाः(फ्) पर्युपासते।
तेषां(न्) नित्याभियुक्तानां(म्), योगक्षेमं(म्) वहाम्यहम्।।9.22।।

जो अनन्य भक्त मेरा चिन्तन करते हुए (मेरी) भली भांति उपासना करते हैं, (मुझ में) निरन्तर लगे हुए उन भक्तों का योगक्षेम (अप्राप्त की प्राप्ति और प्राप्त की रक्षा) मैं वहन करता हूँ।

विवेचन: भगवान कहते हैं भक्ति में दो ही महत्वपूर्ण बातें हैं। **अनन्य प्रेम और निरंतर चिंतन।** अनन्य प्रेम, **ना-अन्य अर्थात केवल एक ही**, दूसरा कुछ भी नहीं, इस तरह का प्रेम। यहां इष्ट और अनिष्ट वाली बात भी समझनी होगी। इष्ट क्या है। कई बार हम भगवान से प्रार्थना करते हैं, भगवान हमें अच्छी नौकरी दे दो, भगवान हमारी बेटी का अच्छे घर में ब्याह दो, भगवान हमारा आरोग्य ठीक रहे, अपने परम प्रिय शिवजी से हम ये सारी प्रार्थनाएं करते हैं, लेकिन यहां शिवजी हमारा इष्ट नहीं हैं,हमारा इष्ट तो हमारी इच्छापूर्ति है। यह भक्ति का सही मार्ग नहीं। भक्ति इच्छा पूर्ति के लिए नहीं, वरन भगवद् प्राप्ति के लिए हो तभी वह भक्ति है। **भगवान हमारे इष्ट तो तभी होंगे जब हम भगवान से भगवान को मांगेंगे।** इच्छा पूर्ति के लिए की जाने वाली भक्ति देवताओं को खुश करती है, देवता खुश होकर उसकी पूर्ति भी करते हैं लेकिन जैसा कि पहले भी कहा, हमारा पुण्य का खाता खाली होने पर देवता हमें वापस मृत्युलोक में भी भेज देते हैं।

इस श्लोक में एक और बहुत महत्वपूर्ण बात कही गई है, योगक्षेमं वहाम्यहम्। योग अर्थात जो मेरे पास नहीं है वह जुड़ जाए, अप्राप्त की प्राप्ति हो जाए और क्षेम अर्थात जो मेरे पास है वह बना रहे, अर्थात प्राप्त की रक्षा होती रहे। भगवान कहते हैं कि जो भक्त मुझ में अनन्य भाव से निरंतर रत रहता है, नित्ययुक्त उपासक होता है, उसके योगक्षेम की पूरी जिम्मेदारी मेरी होती है। भक्ति में यह नित्य युक्तता अत्यंत आवश्यक है। बहुत महत्वपूर्ण है। एक बार एक शिष्य गुरु के पास गया, उसके भक्ति भाव को देखकर गुरु ने कहा तेरा भाव तो बहुत अच्छा है। कुछ दिनों बाद फिर शिष्य से मिलने पर गुरु ने भाव के बारे में कुछ नहीं कहा, तब शिष्य बोला "गुरुजी आप तो कह रहे थे मेरा भाव अच्छा है क्या अब वह अच्छा नहीं है", तब गुरु बोले - जैसी प्रीति आरंभ में वैसी अंत तक बनी रहे तभी तो तू वैकुंठ को जा सकता है ।

निरंतरता के साथ उसी भक्ति भाव से नित्य युक्त होने पर भक्ति का केवल क्रम ही नहीं अपितु भक्ति का स्तर भी बढ़ता जाता है और तभी वह भक्ति सार्थक भक्ति होती है। थम गई तो बस वह भक्ति गई ऐसा ही समझो। इसे बहुत सुंदर शब्दों में तुलसीदास जी ने व्यक्त किया है

तेरा रामजी करेंगे बेड़ा पार, उदासी मन काहे को डरे|

नैया तेरी राम हवाले, लहर लहर हरि आप सम्भाले
हरि आप ही उठायें तेरा भार, उदासी मन काहे को डरे||1||
तेरा रामजी करेंगे बेड़ा पार, उदासी मन काहे को डरे|

आइए यह पूरा भजन सुनते हैं --

https://drive.google.com/file/d/1LkdPZZX7bJmAckmllUmPPcgunn_b-ZaJ/view?usp=sharing

तुलसीदास जी ने यह भी कहा है-

बिगड़ी जनम अनेक कि सुधरे अबहीं आज।
होहिं राम को नाम जपि तुलसी तजि कुसमाज।।

अर्थात भक्ति का सही मार्ग अपनाने से ना केवल इस जन्म का अपितु अनेक जन्मों का कल्याण, आज और अभी करने का दायित्व भगवान उठाते हैं। **योगक्षेम वहाम्यहम् !!**
भगवान इच्छाएं नहीं अपितु आवश्यकताएं पूरी करेंगे और वे आवश्यकताएं बनी रहे; उनकी रक्षा होती रहे; यह व्यवस्था भी भगवान ही करेंगे, ऐसा भगवान का आश्वासन है।

9.23

येऽप्यन्यदेवता भक्ता, यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय, यजन्त्यविधिपूर्वकम्।।9.23।।

हे कुन्तीनन्दन! जो भी भक्त (मनुष्य) श्रद्धापूर्वक अन्य देवताओं का पूजन करते हैं, वे भी मेरा ही पूजन करते हैं, (पर करते है) अविधिपूर्वक अर्थात् देवताओं को मुझसे अलग मानते हैं।

विवेचन: भगवान यहां अविधिपूर्वक और अज्ञानपूर्वक किए जाने वाले पूजन की बात करते हैं। एक उदाहरण से इस बात को समझते हैं। मान लीजिए मेरी पहचान अपने इलाके के एक पुलिस वाले से है, जितनी उसकी पावर है उसके अनुसार वह मेरी मदद हर चीज में करता रहता है लेकिन एक दिन अचानक उसका तबादला हो जाता है, अब मैं क्या करूं सोचने पर मेरी समझ में आता है कि वह पुलिस वाला सब कुछ नहीं था, उसके ऊपर उसे ताकत देने वाला भी कोई नहीं हैं। केवल देवताओं की पूजा करना अज्ञान और अविधि पूर्वक भक्ति है। कर्म भी साथ-साथ करना आवश्यक है।

9.24

अहं(म्) हि सर्वयज्ञानां(म्), भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति, तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते।।9.24।।

क्योंकि सम्पूर्ण यज्ञों का भोक्ता और स्वामी भी मैं ही हूँ; परन्तु वे मुझे तत्त्व से नहीं जानते, इसी से उनका पतन होता है।

विवेचन: जिस प्रकार पुलिस वाले को ताकत देने वाली कुछ उच्च शक्तियां है उसी प्रकार देवताओं को ताकत देने वाली शक्तियाँ भगवान हैं। परमब्रह्म परमात्मा और देवता एक दूसरे से भिन्न हैं। हमारी आयु बहुत कम होती है, उसकी तुलना में देवताओं की आयु बहुत अधिक होती है, लेकिन देवताओं की आयु भी असीमित नहीं होती। ब्रह्मा जी, इंद्र जी इनका कार्यकाल भी कहीं तो समाप्त होता है। इन्हें जो भी ताकत मिली है वह इस बात पर निर्भर करती है कि उनके कितने भक्त हैं, जिसकी जितनी ज्यादा तपस्या, जिसके जितने ज्यादा भक्त, उस देवता की उतनी अधिक ताकत। इसीलिए तो हम सुनते हैं कि विश्वामित्र की तपस्या से इंद्र भी भयभीत हो जाते हैं कि कहीं उनकी ताकत बढ़ ना जाए, इसलिए ऋषियों की तपस्या भंग करने हेतु मेनका को भेजते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि देवताओं का अस्तित्व भी क्षर है, देवता क्षर हैं जबकि परमात्मा/ परमब्रह्म ना जन्मते हैं ना मरते हैं, उनकी आयु असीमित है, देवता अक्षर हैं अर्थात देवताओं को ताकत देने वाली सर्वोच्च शक्ति ही परब्रह्म

या परमात्मा है।

लेकिन यहां भगवान एक और महत्वपूर्ण बात बताते हैं, सकाम उपासना के लिए तो देवता इष्ट हैं लेकिन इन्हीं देवताओं के माध्यम से आप की उपासना जब निष्काम रूप धारण कर लेती है, तब वह परमात्मा प्राप्ति का साधन बन जाती है, और यही मोक्ष का मार्ग है। भगवद् प्राप्ति का यह मार्ग साधन नहीं, भाव की मांग करता है। भगवान तो भाव चाहते है। भक्ति, प्रेम और श्रद्धा से अर्पित कोई भी छोटी से छोटी वस्तु भी भगवान को अत्यंत प्रिय है।

9.25

यान्ति देवव्रता देवान्, पितृन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या, यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।।9.25।।

(सकाम भाव से) देवताओं का पूजन करने वाले (शरीर छोड़ने पर) देवताओं को प्राप्त होते हैं। पितरों का पूजन करने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं। भूत-प्रेतों का पूजन करने वाले भूत-प्रेतों को प्राप्त होते हैं। (परन्तु) मेरा पूजन करने वाले मुझे ही प्राप्त होते हैं।

9.26

पत्रं(म्) पुष्पं(म्) फलं(न्) तोयं(म्), यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं(म्) भक्त्युपहृतम्, अश्नामि प्रयतात्मनः।।9.26।।

जो भक्त पत्र, पुष्प, फल, जल आदि (यथासाध्य एवं अनायास प्राप्त वस्तु) को प्रेमपूर्वक मेरे अर्पण करता है, उस (मुझमें) तल्लीन हुए अन्तःकरण वाले भक्त के द्वारा प्रेमपूर्वक दिये हुए उपहार (भेंट) को मैं खा लेता हूँ अर्थात् स्वीकार कर लेता हूँ।

विवेचन: भगवान को भाव प्रिय है। इस श्लोक में चार वस्तुओं के अर्पण की बात कही गई है। **पत्रं पुष्पं फलम तोयम**, अर्थात पत्र, पुष्प, फल और जल भी यदि संपूर्ण भक्तिभाव से अर्पण किए जाएं तो यह साधारण सी लगने वाली चीजें भी भगवान अत्यंत प्रेम से स्वीकार करते है। **द्रौपदी के** अक्षय पात्र में चिपके **तुलसी पत्र** को भगवान ने स्वीकार किया, **शबरी के झूठे बेर** अर्थात भक्ति भाव से दिए गए फल भी भगवान ने सम्मान से स्वीकारे। इसी प्रकार **भावपूर्ण होकर** भगवान को मात्र **जल भी** अर्पण किया जाए तो वह उसे प्रिय है। भक्ति भाव की कोई सीमा नहीं वह तो असीमित है, बहुत गहरा है। इस बात को समझने के लिए धन्ना जाट की कहानी सुनते हैं।

राजस्थान में धौला कुँआ नाम की एक जगह में रहने वाला धन्ना जाट बहुत भोला था। भाइयों के बीच संपत्ति का बंटवारा होने पर, इसके भोलेपन को देखते हुए, एक गाय, एक छोटा सा घर और मां इसके हिस्से में आई। भोला धन्ना उसमें भी खुश था। मंदिर के पुजारी की नजर अच्छा दूध देने वाली धन्ना की गाय पर थी। ठाकुर जी को दूध चढ़ाने के नाम पर उन्होंने किसी तरह धन्ना से रोज दो-तीन लोटे दूध अपने लिए पाने की व्यवस्था बना ली। एक बार पुजारी जी को कहीं बाहर जाना था, उन्होंने धन्ना के यहाँ पहुंचकर दूध ना भेजने का संदेश दिया। धन्ना आश्चर्यचकित हो गया, पुजारी जी बाहर जा रहे हैं तो क्या भगवान को दूध नहीं मिलेगा, यह सोच कर वह व्याकुल हो गया। बोला, पुजारी जी मैं ही दूध चढ़ा आऊंगा। पुजारी जी घबरा गए, बोले नहीं नहीं, तुम ठहरे जाट, तुम मंदिर में कैसे जा सकते हो... बहुत समय तक बातचीत होने के बाद पुजारी जी बोले ठीक है, मैं ही भगवान को तुम्हारे पास छोड़ जाता हूं। लेकिन उनकी सेवा करना बहुत कठिन काम है, तुम्हें उनकी बहुत देखरेख करनी होगी, नहा धोकर बिना खाए पिए उन्हें भोग चढ़ाना होगा। कर पाओगे, यह सब कुछ? भगवान मेरे घर आएंगे इस आनंद मे लीन धन्ना बोला, हां हां जरूर करूंगा। पुजारी जी चल पड़े, रास्ते में एक पत्थर को उठाया उसे धोकर, चंदन का टीका लगाकर, अच्छे कपड़े में लपेट कर धन्ना के यहां ले गए। धन्ना आश्चर्यचकित, इतने छोटे से भगवान कितना दूध पीते होंगे ? पोल खुलने के भय से पुजारी जी ने झट उसे ठाकुर जी के प्रति कोई भी आशंका व्यक्त करने से मना किया और उनके लौटने तक ठाकुर जी का ख्याल रखने को कहा। धन्ना बड़ा खुश। पूरे भक्ति भाव से ठाकुर जी की सेवा में लग गया। सुबह सुबह उठकरधन्ना बिना कुछ

खाए पिए, नहा धोकर ठाकुर जी की सेवा करने लगा। मां से कहकर अच्छा खाना बनवाया, ठाकुर जी को भोग लगाया और बैठ कर इंतजार करने लगा कि वे कब भोग लगाएं। ठाकुर जी कहां खाने वाले थे। धन्ना को लगा मुझसे ही कोई चूक हुई है, इसलिए ठाकुर जी खा नहीं रहे। याद कर कर के पुजारी जी की बताई सारी बातें करता रहा। ठाकुर जी ने खाना नहीं खाया। धन्ना परेशान, शाम को फिर नहा धोकर भोग की दूसरी थाली मां से बनवा कर ठाकुर जी के सामने बैठ गया। ठाकुर जी कहां खाने वाले थे। लेकिन भाव विभोर अबोध धन्ना भी अपनी जिद पर अड़ गया। सुबह से शाम तक भूखा बैठा धन्ना वैसे ही सो गया। दूसरे दिन फिर यही क्रम चला, ठाकुर जी ने भोग नहीं लगाया। धन्ना बहुत परेशान। तीसरे दिन धन्ना बहुत ही व्याकुल हो गया। उसे लगा मैं जाट हूं, इसलिए ठाकुर जी मेरे हाथ का भोजन नहीं खा रहे हैं। जब ठाकुर जी के लिए मैं इतना अप्रिय हूं तो इस शरीर का क्या फायदा ? यह सोचते हुए थके हारे अत्यंत व्यथित अवस्था वाले धन्ना ने, ठाकुर जी के पैरों तले अपना सिर दे मारा। रक्त बहने लगा पर ठाकुर जी ने भोग नहीं लगाया। फिर सिर दे मारा.... फिर सिर दे मारा.... इस तरह दो तीन बार करने पर अचानक ठाकुर जी प्रकट हुए। अपने कोमल हाथों से धन्ना के सिर का रक्त पोंछते हुए बोले, मैं तो तुम्हारी परीक्षा ले रहा था, तुम्हारी इस भावविभोर भक्ति से में प्रसन्न हूं। कहते हैं उसके बाद कई दिन तक ठाकुर जी धन्ना के घर रहे। पुजारी जी लौटे तो यह घटना सुनकर अत्यंत लज्जित हुए। सोचने लगे **मैं तो इतने दिन तक भगवान को पत्थर समझता रहा लेकिन इस धन्ना ने पत्थर में भगवान को देख लिया।**

भगवान प्रीति और इस विभोर भावना के भूखे हैं। भगवान को पदार्थ से कोई मतलब नहीं, उसे अर्पित करने वाले भाव का होना ही भगवद प्राप्ति के लिए आवश्यक है।

9.27

यत्करोषि यदश्नासि, यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय, तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।9.27।।

हे कुन्तीपुत्र ! (तू) जो कुछ करता है, जो कुछ भोजन करता है, जो कुछ यज्ञ करता है, जो कुछ दान देता है (और) जो कुछ तप करता है, वह (सब) मेरे अर्पण कर दे।

9.28, 9.29

शुभाशुभफलैरेवं(म्), मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
सन्न्यासयोगयुक्तात्मा, विमुक्तो मामुपैष्यसि।।9.28।।
समोऽहं(म्) सर्वभूतेषु, न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां(म्) भक्त्या, मयि ते तेषु चाप्यहम्।।29।।

इस प्रकार (मेरे अर्पण करने से) कर्म बन्धन से और शुभ (विहित) और अशुभ (निषिद्ध) सम्पूर्ण कर्मों के फलों से (तू) मुक्त हो जायगा। ऐसे अपने सहित सब कुछ मेरे अर्पण करने वाला (और) सबसे सर्वथा मुक्त हुआ (तू) मुझे प्राप्त हो जायगा।
मैं सम्पूर्ण प्राणियों में समान हूँ। (उन प्राणियों में) न तो कोई मेरा द्वेषी है (और) न कोई प्रिय है। परन्तु जो प्रेमपूर्वक मेरा भजन करते हैं, वे मुझ में हैं और मैं भी उनमें हूँ।

विवेचन:: भगवान कहते हैं मेरे मन में किसी के प्रति कोई भेद भाव नहीं कोई असमानता नहीं। प्रेमपूर्वक मुझे पूजने वाले के लिए मैं प्रत्यक्ष भी प्रकट हो जाता हूं। इस तरह प्रत्यक्ष रूप में प्रकट होने के लिए संत पुरुष भगवान के साधन बनते हैं, अर्थात भगवान संतो के माध्यम से प्रकट रूप धारण करते हैं।

9.30

अपि चेत्सुदुराचारो, भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः(स्), सम्यग्व्यवसितो हि सः।।9.30।।

अगर (कोई) दुराचारी से दुराचारी भी अनन्य भक्त होकर मेरा भजन करता है (तो) उसको साधु ही मानना चाहिये। कारण कि उसने निश्चय बहुत अच्छी तरह कर लिया है।

विवेचन : पाप कर्म करने वाला भी यदि अपने उन कर्मों को छोड़ने का निश्चय कर ले और उसके अनुसार आचरण करता रहे तो वह भी साधु पद को प्राप्त हो सकता है अर्थात निश्चय और उसका आचरण यह भक्ति भाव के लिए आवश्यक है।

9.31

क्षिप्रं(म्) भवति धर्मात्मा, शश्वच्छान्तिं(न्) निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि, न मे भक्तः(फ्) प्रणश्यति।।9.31।।

(वह) तत्काल (उसी क्षण) धर्मात्मा हो जाता है (और) निरन्तर रहने वाली शान्ति को प्राप्त हो जाता है। हे कुन्तीनन्दन ! मेरे भक्त का पतन नहीं होता (ऐसी तुम) प्रतिज्ञा करो।

विवेचन: यहाँ भगवान कहते हैं कि इस प्रकार अनन्य भाव और निरन्तरता के साथ मेरी भक्ति करने वाले और निष्ठा पूर्वक आचरण करने वाले भक्तों का नाश कभी भी नहीं हो सकता इतना बडा दायित्व भगवान स्वयं उठा रहे हैं।

9.32

मां(म्) हि पार्थ व्यपाश्रित्य, येऽपि स्युः(फ्) पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रा:(स्), तेऽपि यान्ति परां(ङ्) गतिम्।।9.32।।

हे पृथानन्दन ! जो भी पाप योनि वाले हों (तथा जो भी) स्त्रियाँ, वैश्य और शूद्र (हों), वे भी सर्वथा मेरे शरण होकर निःसन्देह परमगति को प्राप्त हो जाते हैं।

विवेचन: इस श्लोक को समझने में हम कहीं गलती करते हैं, हम मानते हैं कि स्त्री, वैश्य और शूद्र इन सभी को एक ही श्रेणी में रखकर भगवान बात कर रहे हैं। लेकिन ऐसा नहीं है, भगवान के मन में कोई भी भेदभाव नहीं है, वे तो एक व्यवस्था की बात करते हैं। ब्राह्मणों ने कुछ ऐसी अव्यवस्था बना दी थी कि, केवल वही भगवद् प्राप्ति के योग्य है, इसके विरुद्ध बात कहते हुए भगवान समझा रहे हैं कि, यह व्यवस्था गलत है। भगवान प्राप्ति का अधिकार पुरुषों के साथ स्त्रियों को भी है, वैश्यों साथ-साथ शूद्रों को भी यह अधिकार है। भगवान कहते हैं कि समाज में फैली भेदभाव की इन भ्रामक कल्पनाओं को दूर करने की जरूरत है।

9.33

किं(म्) पुनर्ब्राह्मणाः(फ्) पुण्या, भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं(म्) लोकम्, इमं(म्) प्राप्य भजस्व माम्।।9.33।।

(जो) पवित्र आचरण वाले ब्राह्मण और ऋषिस्वरूप क्षत्रिय भगवान् के भक्त हों, (वे परम गति को प्राप्त हो जायँ) इसमें तो कहना ही क्या है। (इसलिये) इस अनित्य (और) सुखरहित शरीर को प्राप्त करके (तू) मेरा भजन कर।

विवेचन:भगवान अर्जुन को राज्यश्री की श्रेणी में होने के कारण अपनी शरण में आकर परम गति प्राप्त करने की बात करते हैं।

9.34

मन्मना भव मद्भक्तो, मद्याजी मां(न्) नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवम्, आत्मानं(म्) मत्परायणः।।9.34।।

(तू) मेरा भक्त हो जा, मुझमें मन वाला हो जा, मेरा पूजन करने वाला हो जा (और) मुझे नमस्कार कर। इस प्रकार अपने-आपको (मेरे साथ) लगाकर, मेरे परायण हुआ (तू) मुझे ही प्राप्त होगा।

विवेचन: यह श्लोक बहुत महत्वपूर्ण है। गीता में कुल अट्ठारह अध्याय हैं। हम नौवे अध्याय के ३४ वें श्लोक पर हैं, संपूर्ण गीता का यह ठीक मध्य है। इसी ३४ वें श्लोक को अट्ठारहवें अध्याय के पैसठवें श्लोक की तरह फिर दोहराया गया है।

यह अध्याय अत्यंत गुह्य है, भक्ति के सही स्वरूप और भगवान द्वारा भक्त के योगक्षेम के संपूर्ण दायित्व के आश्वासन में ही इसकी संपूर्णता है। यह स्पष्ट करते हुए संकीर्तन के साथ इस विवेचन सत्र की समाप्ति हुई।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(म्) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्याय:।।

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'राजविद्याराजगुह्ययोग' नामक नवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/